होलीका आध्यात्मिक रहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

जो सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् हैं, वे रसरीतिसे अत्यन्त सुलभ साधारण-से हो जाते हैं। कहते हैं—प्रेमदेवता जिसको छू लेता है, वह कुछ-का-कुछ हो जाता है। अल्पज्ञ सर्वज्ञ हो जाता है और सर्वज्ञ अल्पज्ञ हो जाता है। अल्पशक्तिमान् सर्वशक्तिमान् हो जाता है, सर्वशक्तिमान् अल्पशक्तिमान् हो जाता है। परिच्छिन्न व्यापक हो जाता है, व्यापक परिच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार प्रेमदेवताके स्पर्शसे कुछ-का-कुछ हो जाता है। प्रेमरंगमें रँगे हुए प्रेमीके लिये सम्पूर्ण संसार ही प्रेमास्पद प्रियतम हो जाता है—

उड़त गुलाल लाल भये अम्बर।

यह जो होली होती है, इसमें रंग क्या है? जिसके द्वारा जगत् रँग जाता है—*'उड़त गुलाल लाल भये अम्बर'*—अम्बर माने आकाश, गुलालके उड़नेसे अम्बर लाल हो गया। आकाश इस सारे भौतिक प्रपञ्चका उपलक्षण है।

इस भौतिक जगत्की भौतिकता मिट जाती है। इसमें ब्रह्मात्मकताका आविर्भाव होता है। राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीकी आराधना करनेवाले उनका ध्यान करते हैं—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्॥

(श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र)

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितामोदबाणसौभाग्याम्।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे॥

(श्रीललितात्रिशतीध्यानम्)

'सिन्दूरारुणविग्रहाम्'—सिन्दूरके समान अरुण विग्रह है भगवतीका। वह अरुणिमा क्या है? अतिशय करुणा। देवी आर्द्र हैं—'आर्द्राम्' (श्रीसूक्त ४)। कठोरता तो उनमें है ही नहीं। जीवोंपर असीम करुणा है। उसीसे हर समय आर्द्र हैं। 'तृप्तां तर्पयन्तीम्' (श्रीसूक्त ४) जो स्वयं तृप्त हैं और सबको तृप्त करती हैं। जो स्वयं तृप्त है वही अन्योंको तृप्त कर सकता है। जो परम तृप्त है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वरका जिन्हें संनिधान प्राप्त है, जो अनन्तब्रह्माण्डजननी ऐश्वर्य-माधुर्यकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी भगवतीका भी सर्वोत्तम सारसर्वस्व हैं, वे ही श्रीराधारानी हैं। सर्वेश्वर भी जिनके पादारविन्द-रजकी आराधना करते हैं, उनसे बढ़कर किसकी तृप्ति हो सकती है; उनका तर्पण होनेपर सारे संसारका तर्पण हो जाता है।

'लोहित्यमस्य विमर्शः'—लोहित्य क्या है? विमर्श।

भगवान्का स्वरूप माना है—अखण्ड-बोध। ऐसा बोध जो निर्विशेष है, जिसमें कोई विशेषण नहीं है। घट-ज्ञान, पट-ज्ञान तो सविशेष ज्ञान है, विशेषणयुक्त है; निर्विशेष कहाँ है? अखण्ड-बोधमें लोहित्य है विमर्श।

सजातीय विजातीय स्वगत-भेदशून्य परमात्मा तो हैं—प्रकाशात्मक शिव; उनमें जो विमर्श आया वही है लोहित्य।

लोहित्य माने सविशेष ज्ञान, तत्तदवस्तु-ज्ञान—प्रपञ्चज्ञान।

भगवान् श्रीकृष्ण करुणावरुणालय हैं। उन्होंने जीवोंको संसारमें भेजा है। क्यों? कर्मोंके अनुसार फलोपभोगके लिये।

माँके हृदयमें करुणा रहती है, यद्यपि कभी-कभी वह बालकके हाथमें खिलौना पकड़ाकर खेलनेके लिये छोड़ देती है; दयार्द्र होकर उसका ध्यान फिर भी रखती है। समीप ही रहती है, ताकि बालकपर कभी अड़चन पड़े तो सीधे वह माँकी गोदीमें आ जाय। भगवान्ने जीवोंको कर्मफलोपभोगके लिये संसारमें भेजा अवश्य है, परंतु अपनेतक आनेका अमोघ सम्बल देकर भेजा है; वह है—'प्रेम'। प्रेम प्रत्येक प्राणीमें है। ऐसा कोई जीव नहीं, जिसमें प्रेम नहीं। बड़े-से-बड़े राक्षसमें भी प्रेम होता है; अन्यत्र न सही, किंतु अपनी पत्नीमें, अपने बच्चोंमें, अपने सुखमें। प्रेमविहीन संसारमें कोई है ही नहीं।

यदि जीव चाहे तो प्रभुमें प्रेम करके प्रभुतक पहुँच सकता है। जब यह सिद्ध है कि प्रेमविहीन कोई है नहीं, तब प्रेमको जगत्-कारण सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा मानना चाहिये; क्योंकि कारण ही कार्यमें अनुस्यूत होता है। है कोई स्वर्णाभूषण, जिसमें स्वर्ण अनुस्यूत न हो? है कोई मृद्घट, जिसमें मृत्तिका अनुस्यूत न हो? है कोई जलतरंग, जिसमें जल अनुस्यूत न हो? है कोई कार्य, जिसमें कारण (उपादान) अनुस्यूत न हो? जो भी कार्य होगा, उसके भीतर, बाहर,

मध्यमें कारण अनुस्यूत होगा। 'प्रेम'—जगत्-कारण है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन प्रभुमें प्रेमास्पदता है, प्रेमरूपता है; अत: कारण-विधया प्रत्येक कार्यमें वह अनुस्यूत है।

अणु-अणु, परमाणु-परमाणुमें प्रेम-तत्त्व विद्यमान है। एक परमाणु दूसरे परमाणुसे बिना स्नेह (प्रेम)-के कैसे मिले? एक परमाणु जब दूसरे परमाणुसे मिलता है, तब स्नेह या प्रेमसे ही मिलता है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र—सभी स्नेहसे ही जुड़े हैं। बिना स्नेह (प्रेम)-के कोई किसीसे जुड़ता है क्या? सारा सम्बन्ध स्नेहमूलक है। सारा विश्व-प्रपञ्च स्नेहके आधारपर जुड़ा है। सारा संसार स्नेहका ही परिणाम, उल्लास, विकास है। स्नेह (प्रेम) सबमें अनुस्यूत है।

'प्रेम' क्या है?—

महानुभावोंने कहा है—'जिसमें सभी रस, सभी भाव उन्मज्जित-निमज्जित हों, वह रससिन्धु ही प्रेम है'—

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरङ्गा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः॥

(चैतन्यचन्द्रोदय)

इस तरह प्राणिमात्रके पास प्रेम है। जब प्राणीको घबराहट हो तो इसी प्रेमका सहारा पकड़कर भगवान्‌के मङ्गलमय अङ्कमें पहुँच जाना चाहिये। देखो! प्रेमका अद्भुत प्रभाव! आज 'होली' के दिन, जिनकी बड़ी-से-बड़ी आपसमें दुश्मनी होती है, वह मिट जाती है। रंग प्रेम ही है। आजके दिन जब व्यक्ति घरसे बाहर मिलने चलते हैं तो यह नहीं देखते कि यह गरीब है या अमीर, यह शत्रु है या मित्र? गरीब हो चाहे अमीर, शत्रु हो या मित्र सबसे बड़े प्रेमसे गले लगकर मिलते हैं। आज (होली)-का दिन बड़े प्रेमसे गले लगकर मिलते हैं। आज (होली)-का दिन शत्रुता खोनेका है। सबसे प्रेमपूर्वक मिलनेका है। सारी भावनाओंको दूर करके अखण्ड ब्रह्मात्मभावकी बात है।

राधाकृष्ण, प्रिया-प्रियतम अनन्तब्रह्माण्डनायक सर्वशक्तिमान्, सर्वाधिष्ठान आनन्दकन्द, श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति प्रेमात्मक हैं। वे ही सर्वरूपोंमें विलसित हो रहे हैं। प्रेमदेव ही भोक्ता-भोग्य और प्रेरयिताके रूपमें प्रकट हो करके लीला कर रहे हैं। श्रीकृष्णके साथ ग्वालबाल और राधारानीके साथ उनके सखीवृन्दके रूपमें प्रेम ही क्रीड़ा कर रहा है। श्यामसुन्दरके प्रेममें ही सारा अन्त:करण, अन्तरात्मा, रोम-रोम रँगा हुआ है।

प्रेम जहाँ होता है, वहाँ कोई अन्तर नहीं होता है। किसी प्रकारके भेदभावकी कल्पनातक नहीं रहती। अग्नि सब जगह है, कोई काष्ठ ऐसा नहीं जिसमें वह (अग्नि) नहीं है। हर एक काष्ठमें अग्नि है। काष्ठमें अग्नि प्रकट करनेके लिये उस काष्ठसे सम्बन्ध जोड़ दो, जिसमें वह प्रज्वलित (प्रकट) है। अव्यक्त अग्निवाले काष्ठका व्यक्त अग्निवाले काष्ठसे सम्बन्ध जुड़ते ही उसमें भी अग्निका प्राकट्य हो जाता है। श्यामसुन्दर और उनकी प्राणेश्वरी राधारानीमें प्रेम प्रकट है।

अन्यत्र प्रेम, प्रेमका आश्रय और उसके विषयमें भेद है; पर यहाँ नहीं। जो प्रेम है, वही उसका आश्रय है और वही उसका विषय है। ऐसी स्थितिमें इन्होंने (प्रेमात्मक-प्रियतम श्रीराधामाधवने) जिसे छू दिया, वही शुद्ध प्रेम हो गया। रंग, रोली, अबीर—ये सब वस्तुएँ इनके स्पर्शमात्रसे शुद्ध प्रेमरूप हो जाती हैं। ये सब सांसारिक पदार्थ भगवत्संस्पर्शमात्रसे भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। गन्धकको पारदमें घोटें तो कुछ काल-पश्चात् गन्धक जैसे पारद (पारा)-रूप हो जाती है, वैसे ही पूर्णके सम्बन्धसे अपूर्ण वस्तु पूर्ण हो जाती है, प्राकृत वस्तु दिव्य—अप्राकृत हो जाती है।

आप जानते हैं, दुनियामें तृष्णा निन्दनीय है। कौन-सी तृष्णा? दुनियाकी तृष्णा। दुनियाकी तृष्णा निन्दनीय होती है, पर यदि आपको भगवत्सम्मिलनकी तृष्णा हो तो बड़ी उत्तम है, निन्दनीय नहीं है। भगवान्‌के मुखचन्द्रकी तृष्णा, पादारविन्द-नखमणिचन्द्र-चन्द्रिकाकी तृष्णा इतनी उत्तम है कि इसके ऊपर लाखों वैराग्य, लाखों ज्ञानको राई-नोनकी तरह झोंक दें। इसके सामने इनका कोई अर्थ, महत्त्व नहीं। इसलिये यह तृष्णा बड़ी कीमती चीज है; बड़े भाग्यसे मिलती है। इस तरह यहाँ तृष्णाके विषयका इतना अद्भुत चमत्कार है कि जिसके योगसे व्यक्तिको भवसागरमें डुबोनेवाली तृष्णा तारनेवाली बन जाती है। इसी प्रकार भगवत्संस्पृष्ट वस्तुकी महिमा बढ़ जाती है। इसी दृष्टिसे भगवद्धामकी अद्भुत महिमा है।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं—'कोई चाहे पापी हो, पुण्यात्मा हो, देवता हो, राक्षस हो, वह वृन्दावनधाममें प्रविष्ट हो करके सद्यः (तत्काल) आनन्दघन हो जाता है, सद्घन हो जाता है, चिद्घन हो जाता है'—

यत्र प्रविष्टः सकलोऽपि जन्तुरानन्दसच्चिद्घनतामुपैति।

(श्रीवृन्दावनमहिमामृतशतक)

जैसे लवणकी खानमें जो भी वस्तु पड़ जाती है, थोड़े ही दिनोंमें वह लवण बन जाती है। वैसे ही भगवद्धाममें प्रविष्ट व्यक्ति तत्क्षण आनन्दघन हो जाता है। यह बात दूसरी है कि सभी व्यक्तियोंको उस आनन्दघनताकी अनुभूति तत्काल नहीं हो पाती। अपनेमें आनन्दघनताके प्राकट्यको व्यक्ति तत्काल अनुभव नहीं कर पाता, ठीक वैसे ही जैसे आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदारानी आनन्दघन नहीं समझ पाती थीं। जैसे लौकिक माता-पिता अपने लौकिक-प्राकृतिक बालकको बाँध देते हैं, वैसे ही माँ यशोदाने भगवान् श्रीकृष्णको ओखलीसे बाँधा—

'बबन्ध प्राकृतं यथा।'

(श्रीमद्भा० १०।९।१४)

यशोदारानीको यह नहीं मालूम पड़ा कि मैं अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकको बाँध रही हूँ। ऐश्वर्याधिष्ठातृ महाशक्तिने भगवान्‌को बाँधनेके उपक्रमको देखकर सोचा—'अरे! हमारे देखते-देखते यह अज-अनन्त अपरिच्छिन्नको बाँधेगी, हमारे प्रभुको ही बाँधेगी?' इधर यशोदाने हठ कर लिया—'कहाँतक नहीं बँधेगा; आखिर हमारा लाला ही तो है। इसे बाँधकर रहूँगी।' दोनोंका टण्टा पड़ गया। दुनियाभरकी रस्सी बटोरते-बटोरते बाँधनेकी कोशिश की, पर दो अङ्गुल छोटी, दो अङ्गुल कम!—

'द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन', 'तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनम्।'

(श्रीमद्भा० १०।९।१५-१६)

दो अङ्गुल कम क्या? आचार्य लोग कहते हैं—'भक्तका परिश्रम पूरा हो जाय और भगवान्‌की अनुकम्पा उछल जाय तो दो अङ्गुलकी कमी पूरी हो जाय। भक्तजनका परिश्रम अभी पूरा नहीं हुआ और भगवदनुकम्पाका अभी आविर्भाव नहीं हुआ, यही बँधनेमें देरी है।'—

—तो बाँधते-बाँधते नन्दरानी थक गयीं। हाँफने लगीं, गरम-गरम श्वास श्यामसुन्दरके श्रीअङ्गमें लगा और मैयाके माथेकी पसीनेकी बूँद भी श्रीअङ्गपर पड़ी। भक्तजनका परिश्रम पूरा हो गया। भगवान्‌का ध्यान गया—'माँका परिश्रम पूरा हो गया, अनुकम्पा प्रकट हो गयी। दो अङ्गुलकी कमी पूरी हो गयी। जैसे साधारण बालकको उसकी माँ बाँध देती है, वैसे ही अनन्त अखण्ड अपरिच्छिन्न श्यामसुन्दरको माँ यशोदाने बाँध दिया'—

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १०।९।१८)

इस तरह वृन्दावनकी दिव्यता, यहाँके निवासियोंकी दिव्यता मालूम नहीं पड़ती। सिद्धान्त यह है कि 'वृन्दावनधामके आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र, तारा—ये सब प्राकृत नहीं, अलग (विलक्षण) हैं। इसी तरह श्रीकृष्ण भी प्राकृतोंसे अलग हैं, जो वृन्दावनधाममें प्रविष्ट हो गये, वे भी प्राकृत नहीं रह गये, आनन्दघन हो गये। केवल प्राकट्यमें देर है। जब उसके सच्चिदानन्दरूपताका प्राकट्य होगा, तब आनन्द सत्-चित्-घनता जगमगा उठेगी।'

अवधूतगीतामें लिखा है—

न हि मोक्षपदं न हि बन्धपदं न हि पुण्यपदं न हि पापपदम्।
न हि पूर्णपदं न हि रिक्तपदं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥

(५।१९)

'मोक्षपद नहीं है और बन्धपद भी नहीं है। पुण्यपद भी नहीं है और पापपद भी नहीं है। पूर्णपद भी नहीं है और अपूर्णपद भी नहीं है। इसलिये हे मन! तू रुदन क्यों करता है, यह सब सम है।'

न बन्ध है, न मोक्ष है, न पुण्य है, न पाप है। एकमात्र अनन्त-अखण्ड-निर्विकार-पूर्णतम पुरुषोत्तम और उनका वह अखण्ड प्रेम है। इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जबतक उस (भगवत्तत्त्व)-का प्राकट्य नहीं होता, तबतक सब प्राकृत-जैसा है। उसीके प्राकट्यके लिये महायज्ञोंका अनुष्ठान, अङ्गन्यास, करन्यास, भूतशुद्धि, भूशुद्धि, नामजप, गङ्गास्नान, श्रीवृन्दावनधाममें निवास, रसिक संतोंका सम्पर्क और सत्संगादिका आलम्वन है। श्रीराधाकृष्ण आनन्दस्वरूप हैं। इनमें आनन्दका पूर्ण प्राकट्य है। इनके संस्पर्शकी देर है। इनके स्पर्शसे सव चिन्मय हो जाता है। चिन्मयके स्पर्शसे सवमें चिन्मयता आती है। ब्रह्मात्मकता आती है, सारा प्रपञ्च चिन्मय हो जाता है। उसकी लौकिकता, प्राकृतता, भौतिकता वाधित हो जाती है। उसमें अलौकिकताका आविर्भाव हो जाता है। अनन्तता, ब्रह्मात्मता, रसात्मकताका आविर्भाव होता है—यही होलीकी लीलाका आध्यात्मिक रहस्य है।